अ ध्या य ती स रा

धर्म संबंधी कबीर की धारणा

धर्म संबंधी कबीर की धारणा

`धर्म` शाब्दिक अर्थ ——

धर्म शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। एक ही निश्चित और सीमित अर्थ में `धर्म` शब्द का प्रयोग नहीं होता। एक ही धर्म शब्द भाषा और विचार की परम्परा में अनेक अर्थों का वाचक बन गया है। इनमें कुछ अर्थ अधिक व्यापक हैं और कुछ कम, कुछ अर्थ सामान्य हैं और कुछ विशेष। `धर्म` शब्द का सबसे व्यापक अर्थ उसके व्याकरणगत मूल धातु `धृ` पर आश्रित है। `धृ` का अर्थ धारण करना है। `धृ` धातु से निर्मित होने के कारण धर्म का अर्थ धारण करनेवाला है। जो धारण करता है वही धर्म है।

धर्म से अभिप्राय उन गुणों अथवा लक्षणों से है, जो किसी वस्तु के स्वरूप को धारण करते हैं। धारण करने का अर्थ अपनाना, पालन करना, और बनाये रखना है। साधारण व्यवहार में किसी मनुष्य के एक निश्चित विचार अथवा विश्वास को धारण कहते हैं। `धारणा` के सभी प्रयोगों में स्थिरता का भाव पाया जाता है। स्थिरता का अभिप्राय एक निश्चित रूप के बने रहने से है। स्वरूप की स्थिरता का निर्वहण अथवा संरक्षण `धारणा` का मुख्य लक्षण है।

धर्म की परिभाषा —

धर्म की अनेक परिभाषाओं में से निम्न बहुत ही प्रसिध्द हैं ——

(१) ` आचार प्रभवो धर्मः ।

(२) चोदना लक्षणार्थो धर्मः ।

(३) धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद् धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।।

(४) यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः ।। ` १

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

धर्म की परिभाषाओं पर विचार करने पर उनके दो स्थूल पक्ष दिखाई देते हैं। उन्हें हम धर्म के साधारण और विशेष स्वरूप कह सकते हैं। विशेष स्वरूप व्यक्ति, देश और काल की सीमाओं में बंधा रहता है। इसी कारण विविध देशों के धर्मों में हमें अनेक विभेद दिखायी देते हैं। धर्म का साधारण स्वरूप देश, काल और व्यक्ति की सीमाओं पर निर्भर रहता है और प्राय: सभी देशों के धर्मों में समान रूप से परिव्याप्त है। इसमें मानव मात्र के नैतिक नियमों की प्रतिष्ठा रहती है। धर्म का यही स्वरूप मानव धर्म के नाम से प्रसिध्द है।

विश्व के धर्म संस्थापकों ने प्राय: अपने धर्म में धर्म के दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा की है। किन्तु उनके उठते ही धर्म के ठेकेदार धर्म के विशेष स्वरूप को लेकर सदैव धर्म का अनर्थ करते रहे हैं। इसी कारण किसी भी धर्म का स्वरूप विकृत हुए बिना नहीं रहा। किन्तु यह विकृत स्वरूप चिरस्थायी कभी नहीं रहा। समय के प्रभाव में सदैव उसकी प्रतिक्रिया उदय होती रही। प्रतिक्रिया के रूप में उद्भूत धर्म के इन साधारण स्वरूपों में सहजाचरण, सहज साधना और सहजोपासना विधि पर सदैव ही ध्यान रखा गया है। इन सब में मानव धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया गया है। कबीर की धार्मिक विचारधारा का उदय भी हिन्दू और इस्लाम धर्मों के पाखंड पूर्ण एवं विकृत रूप की प्रतिक्रिया के रूप में समझना चाहिए। यही कारण है कि इसे सहजधर्म, मानवधर्म, निज धर्म या हित धर्म कहते हैं।

समाज की स्थिति को सुस्थिर रखने वाला तत्व धर्म है। यों तो धर्म शब्द बड़ा व्यापक अर्थवाही है, परन्तु यहाँ उसका प्रयोग लोक प्रचलित संकुचित अर्थ में ही हम कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज उपासना-विधि और साधना-पध्दतियाँ आदि हैं।

कबीर का युग अंधानुकरण एवं अंधविश्वास का था। लोग धर्म का पालन हृदय से नहीं, भय से किया करते थे। इसलिए कबीर ने मिथ्याचार और बाह्याडम्बरों पर करारा व्यंग्य किया। उनका खण्डन किया। समाज में सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार किया। ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया, मांस, मदाण, मद्य-

पान का निषेध किया। क्रोध, तृष्णा कपट आदि कुप्रवृत्तियों का विरोध किया। सरलता, हृदय की निष्कपटता, मन की शुध्दता आदि का प्रचार किया और सबसे बड़ा कार्य किया, वह समाज में साम्यवाद की प्रतिष्ठा का। समाज में ऊँच-नीच, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि के भेद-भाव को आश्रय देने वालों की अच्छी खबर ली, दृढ़ता से उसकी निरर्थकता सिद्ध की। उनका दृढ़ विश्वास था कि शान्ति तभी मिल सकती है, जब मनुष्य में समदृष्टि आ जाती है। कबीर का साम्यवाद एक ओर तो इस्लामिक साम्यवाद से प्रभावित प्रतीत होता है और दूसरी ओर हिन्दुओं के अद्वैतवादी आध्यात्मिक साम्यवाद से भी अनुप्राणित है। उनका साम्यवाद इस्लामिक साम्यवाद की व्यावहारिकता और भारतीय अद्वैतवाद की ज्ञानात्मकता के सुन्दर समन्वय से बना था।

कबीर के धार्मिक विचार —

कबीर बहुत बड़े विचारक थे, इसलिए वे विवेकहीन प्रथाओं से दूर थे। वे किसी धर्म के नहीं थे। उनका धर्म एक मानव धर्म था, जो अपने आप में अनुभूति से प्राप्त होता है। परन्तु समाज का प्रचलित धर्म स्वानुभूति मूलक नहीं था। वह देखा देखी अपनाया गया था। इसलिए वह यथार्थ से बहुत दूर था। समाज में अनेक जातियाँ थीं और उन जातियों के अलग-अलग धर्म थे। समाज में प्रचलित हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं इस्लाम धर्म पर भी कर्मकाण्डों व मिथ्याडम्बरों का प्रभाव था। कबीर को इन सभी आडम्बरों से घृणा थी। वे समाज को इस अज्ञान के अन्धकार में पड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे।

महात्मा कबीर के विश्वासों की प्रथम भूमिका ध्वंसात्मक है। उन्होंने सभी धर्मों के सभी अन्धविश्वासों, पाखण्डों एवं बाह्याडम्बरों का बहुत विरोध किया था, किन्तु ये विरोध जड़तामूलक नहीं, पूर्ण बुद्धिवादी हैं।

' कबीर ने सभी रूढ़ियों, आडम्बरों और पाखंडों का खुलकर खण्डन करके समाज में निरन्तर चलने वाली हलचल पैदा कर दी। ' मसि-कागद ' को न छूने वाले कबीर ने काशी के पण्डितों, मुल्लाओं और काजियों को जिस साहस और निर्भीकता के साथ ललकारा, वह इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। ' [2]

'पंडित देखहु मनमहँ जानी ।

कहु धौ छुति कहाँ ते उपजी, तबहिं छुति तुम मानी ।।'[3]

छुआ - छूत पर तर्क उपस्थित करते हुए वे पाँडे-पण्डितों से प्रश्न करते हैं -- 'तुम किस लिए छुआछूत मानते हो' ? वास्तव में ऐसा कोई स्थान भी है, जो पूर्ण रूपेण पवित्र है ?

स्नान, संध्या, तपस्या, षट्कर्म आदि पर भी उन्होंने कड़ी आलोचना की है।

'संधिआ प्रात इस्नान कराहीं ।

जिउ भए दादुर पानी माहीं ।।'[4]

प्रात:काल तथा सायंकाल के समय स्नान करके अगर मुक्ति प्राप्त होती तो मेंढक तो हमेशा पानी में ही रहा करता है, उसे कब की मुक्ति प्राप्त होनी चाहिए थी । इससे यह स्पष्ट है कि बार-बार नहाना, स्नान-संध्या करना मिथ्याडम्बर ही है।

'संझाया तरपन अरु षट करमां । लगि रहे इनके आसरमां ।

गायत्री जुग चारि पढ़ाई । पूछो जाइ मुकुति किनि पाई ।।'[5]

संध्या तर्पण और षट्कर्मों में लोग लगे रहते हैं। गायत्री मंत्र का पठन करते रहते हैं। कबीरदास इन बातों की खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं, इनमें से किसे मुक्ति मिली है ? अर्थात् स्पष्ट है कि एक ने भी मुक्ति प्राप्त नहीं की है। अर्थात् ये सभी मिथ्याचार हैं।

'क्या संध्या - तर्पण के कीन्हें, जो नहिं तत विचारा ।

मूंड-मुंडाये सिर जटा रखाये, क्या तन लाये छारा ।।'[6]

बाह्याडम्बरों की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए तथा ईश्वरी तत्व के अनुभव पर जोर देते हुए कबीर कहते हैं कि अगर ईश्वरी तत्व का विचार न हो, अनुभव न हो, तो संध्या-तर्पण करने से क्या होता है ? या सिर मुंडाने से तथा जटा रखने से क्या बनता है याने वह करना निरर्थक है। ईश्वरी तत्व को समझ लेना ही

महत्वपूर्ण बात है।

कबीरदास व्यर्थ के जप व्रतादि को पासन्द नहीं करते थे। भगवान के भजन का परित्याग कर किए जानेवाले व्रत उन्हें पसन्द नहीं थे।

" तीरथ बरत नेम कीए रसते भै सातल जौहि।। "७

तीर्थ स्थान के सम्बन्ध में होने वाली अंध श्रध्दाओं का भ्रम दूर करते हुए कबीरदास कहते हैं ——

" जो कासी तन तजे कबीरा।
तौ रामहिं कहा निहोरा रे।। " ८

जनश्रुति के अनुसार काशी में मृत्यु प्राप्त करने वाले को मुक्ति प्राप्त होती है। इसको व्यर्थ स्पष्ट करते हुए कबीर ने यह स्पष्ट किया है कि अपने कर्मों से ही मनुष्य को मुक्ति प्राप्त हो सकती है, किसी तीर्थस्थान से नहीं।

संक्षेप में कबीर के सहजधर्म में किसी प्रकार के बाह्याचारों का स्थान नहीं है। उनका सहजधर्म हृदय की निष्कपटता, चरित्र की आचार प्रवणता और मन की शुध्दता पर आधारित है।

" काम, क्रोध, तृष्णा, तजे ताहि मिले भगवान। " ९

अर्थात् काम, क्रोध, तृष्णा आदि का जो त्याग करता है, याने षड्रिपुओं पर विजय प्राप्त करता है, उसे ही भगवान मिलते हैं।

नग्न पंथी योगियों को तथा मुंडन करने वालों को उन्होंने इस प्रकार फटकारा है ——

" नंगे फिरे जोग जो होई, बन का मृग मुक्ति गया कोई।
मुँड़-मुंडाये जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेड न पहुँची कोई।। "१०

कबीर के जमाने में नग्न पंथिओं का प्रचलन था। उन्हें फटकारते हुए उनकी रहन-सहन की आलोचना करते हुए कबीर कहते हैं —— नग्न फिरने से अगर योग साध्य होता, तो बन में रहने वाले मृग को कब की मुक्ति मिल गयी होती। उसी प्रकार अगर सिर्फ मुंडन मात्र से सिध्दि प्राप्त होती तो भेड-बकरियाँ कब की स्वर्ग गयी होती।

कुछ लोग केवल ब्रह्मचर्य को ही सब कुछ मानते थे और मात्र उसी के आधार पर मुक्ति प्राप्ति की आशा रखते थे। कबीर कहते हैं ——

` बिन्दु राखे जो तरीं ऐ भाई।
खुसरे किउ न परम गति पाई।। `[११]

कबीर काल में पुरूषों को खुसरे बनाने का प्रघात था। जिसके कारण वे पौरूषत्व हीन बनते थे। तो जो ब्रह्मचर्य पालन से ही परमगति प्राप्त करने में विश्वास करते थे, उसकी खिल्ली उड़ाते हुए कबीरदास कहते हैं ` अगर बिन्दु मात्र रखने से परमगति प्राप्त होती तो खुसरे को परम गति क्यों न प्राप्त होती ? `

कुछ लोग छापा-तिलक को ही सर्वस्व मान बैठे थे। उन्हें भी कबीर ने फटकारा है ——

` बैस्नो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाई करि दाध्या लोग अनेक।। `[१२]

वैष्णव पंथ में छापा-तिलक लगाने का जो बाह्याडम्बर है, वह किस प्रकार अयोग्य है, यह कबीर स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं —` अगर विवेक प्राप्त न हो तो वैष्णव होने से भी क्या होता है।

उस समय हिन्दुओं में प्रमुखत: शाक्त, शैव और वैष्णव तीन प्रकार के लोग थे। इन में वैष्णव अपेक्षाकृत अच्छे थे। शाक्त सबसे अधिक पतित हो गए थे। मांस, मद्य, मछली, मुद्रा और मैथुन इन पंच मकारों का उनकी उपासना पध्दति में महत्वपूर्ण स्थान था। इसलिए कबीर ने उन्हें भला-बुरा कहा है।

` साकत से सूकर भला, सूचा राखे गाँव। `[१३]

शाक्तों की निर्भत्सना करते हुए कबीरदास उनसे भी सुअर को अच्छा मानते हैं, क्योंकि वह गाँव साफ रखता है।

` साषत सँगु न कीजिए, दूरहि जइये भागु।
बासन कारो परसिये, तउ कछु लागे दागु।। `[१४]

शाक्तों की संगति न करने के लिए कबीरदास कहते हैं। इतना ही नहीं, तो उनसे दूर भाग जाने के लिए कहते हैं, क्योंकि उनकी संगति मात्र से ही दोष लगने की संभावना है।

अशिक्षा तथा उचित शास्त्र-ज्ञान के अभाव में हिन्दुओं ने मूर्ति को ही भगवान् मान लिया था। उसकी पूजा में ही लोग धर्म की इतिश्री मान बैठे थे। कबीर ने इसका भी विरोध किया।

' पाहन केरा पूतला, करि पूजैं करतार।
इहि भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली धार ।।'[१५]

मूर्ति-पूजा की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं, ' पत्थर का पुतला करके उसी को भगवान मानकर लोग उसकी पूजा करते है और अपनी मुक्ति का भरोसा करते हैं, वे भयानक प्रवाह में डूब जाते हैं। स्पष्ट है, पत्थर हमें मुक्ति नहीं दे सकता। उसकी पूजा - अर्चना में लगे रहने से हम पवित्र बनते हैं, यह हमारा भ्रम है। इसके बजाय अगर हम सच्चे करतार (ईश्वर) पर विश्वास करें, उसका भरोसा करें, तो मुक्ति पा सकते हैं।

' पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पुजूँ पहार।'[१६]

' अगर पत्थर पूजने से ईश्वर मिलता है तो मैं खुद पहाड़ ही पूजूँगा।' इस तरह कह कर कबीरदास जी ने मूर्ति पूजा की खिल्ली उड़ाई है।

ईश्वर की मूर्ति करके उसकी पूजा सब करते हैं और उसकी सेवा में लगे रहते हैं। ईश्वर तो अलख-निरंजन है, फिर उसकी मूर्ति बनाना यह तो पूर्णतः अनुचित बात है तथा उसकी सेवा में लगे रहना भी उचित नहीं। हमें चाहिए कि निर्गुण, निराकार को समझने का हम प्रयत्न करें और उसकी ही सेवा में लगे रहें।

' जेतो देखौं आत्मा, तेता सालिगराम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू काम।'[१७]

कबीरदास कहते हैं, ' अगर पूजा या सेवा ही करनी है तो मनुष्य की सेवा करो जिससे सामाजिक संगठन बने। अच्छे मनुष्य ही देव हैं। मनुष्य मनुष्य की सेवा करता है तो कभी न कभी वह उसके काम आयेगा, परन्तु पत्थर किस काम का।

हर आत्मा ही सालिगराम है, भगवान है। इसलिए पत्ती फूल तोड़कर पत्थर पर चढ़ाना भूलता है।`

अडम्बर युक्त जप-तप तथा माला फेरते रहने के बारेमें भी उन्होंने विरोध किया है।

` जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत वेसास।
सूबे सेबल सेब्यिा,यौं जग चल्या निरास।।` १८

जप, तप करना यह झूठ बात है और तीर्थाटन करने में कुछ अर्थ नहीं है। यह सब केवल आडम्बर है।

` माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुँह माँहिं।
मनुवा तो दस दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं।।`१९

माला फेरकर जप-जाप्य करने की निरर्थकता स्पष्ट करते हुए कबीरदास कहते हैं --` माला तो हाथ में फिरती रहती है, उस समय नाम-जप के लिए जीभ मुख में फिरती रहती है और मन तो दसों दिशाओं में फिरता रहता है। यह ईश्वर - स्मरण,चिन्तन नहीं है। माला फेरना ,नाम-स्मरण करना यह तो दिखावा हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात ईश्वर में मन-चित्त की एकाग्रता है और अगर यह न हुआ तो बाकी बातें व्यर्थ हैं।`

इस प्रकार के अनेक रीति-रिवाज हिन्दू समाज में प्रचलित थे, जिससे मुक्त होना सबके लिए कठिन था। इससे ऐसा दिखाई देता है कि बाह्य कर्मों में ही लोग सुख - सन्तोष का अनुभव करते थे। परन्तु आन्तरिक शुध्दता या आत्म चिन्तन उनके लिए व्यर्थ था। अधिक लोग बाह्य क्रिया व्यापार में रूचि लेते थे। इसलिए उनका आत्म - चिन्तन अधूरा था। वे अपने-आप को समझने में असमर्थ थे। आचार-विचार में पीछे थे। लोगों में आन्तरिक पवित्रता नहीं थी। कबीरदास कहते हैं ---

` मन में मैला तीर्थ न्हाँवे, तिनि बैकुंठ न जाँनाँ।
पाखड करि करि जगत भुलाँनाँ, नाँहिन राम अयाँनाँ।।` २०

पवित्र होने के लिए लोग गंगा स्नान करते थे, तीर्थ यात्रा करते थे। इन्हीं सारे पाखण्डों में जगत् भूला हुआ था, जिसके कारण उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था।

उस समय जन्म के अवसर पर बधाई दी जाती थी। विवाह के अवसर पर मंगलचार गाये जाते थे। वेद, कुरान के नाम पर समाज में अनेक पाखण्ड फैले थे। मरने के बाद भी कुछ कर्मकाण्ड ऐसे प्रचलित थे, जिनको देखकर कबीर ने अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की है ----

" तार्थे कहिये लोकाचार, बेद कतेब कथैं ब्योहार।
जारि बारि करि आवै देहा, मूवाँ पीछै प्रीति सनेहा ।।
जीवत पित्रहि मारहि डगा, मूवाँ पित्र ले घालैं गंगा ।।
जीवत पित्र कूँ अन न ख्वावैं, मूँवाँ पाछैं प्यंड भरावैं ।।
जीवत पित्र कूँ बोलै अपराध, मूँवाँ पीछै देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाई पित्र क्यूँ पावै ।।" [२१]

वे कहते हैं, " ये विचित्र लोग हैं, जो वेद, कुरान से लोकाचार एवं व्यवहार ग्रहण करते हैं। ये मृत शरीर को जलाकर आते हैं तो मरने के बाद प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जीवित रहने पर पिता को डंडे से मारते हैं और मरने पर गंगाजल अर्पित करते हैं। जीवित रहने पर पिता को अन्न नहीं देते और मरने पर पिण्ड दान करते हैं। जीते जी पिता को अपराधी कहते हैं और मरने पर श्राद करते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि कौवे के खाने पर पिता उसे कैसे पाता है ? " इस प्रकार के अनेक कर्मकाण्ड समाज में प्रचलित थे, जिनसे जनता का गहरा लगाव था।

" लोक वेद कुल की मरजादा, इहै कले में पासी ।।" [२२]

ये सारे कर्मकाण्ड जनता की प्रगति में बाधक थे। इसीलिए कबीर ने सभी कर्मकाण्डों का विरोध किया था।

इन कर्मकाण्डों के कारण समाज में विविध क्रिया कलाप प्रचलित थे। समाज की विविधता पर कबीर बेचैन और उदास थे।

"ऐसे देखि चरित मन मोह्यो मोर;
ताथे निस बासुरि गुन रमौं तोर ।।
इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमें उदास इक नगन निरंतर रहे निवास ।।
इक जोग जुगुति तन हूँहिं खीन, ऐसे राम नाम सँगि रहे न लीन ।।
इक हूँहिं दीन एक देहि दाँन, इक करे कलापी सुरा पाँन ।।
इक तंत मंत ओषध बाँन, इक सकल सिध राखैं अपाँन ।।
इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसैं राम नाम सूँ करे न प्रीति ।।
इक घोम घोटि तन हूँहिं स्यान, यूँ मुकति नहीं बिन राम नाम ।।"[२३]

वे इन लोगों के विविध कर्मों और विविध वेषों को देखकर भीतर ही भीतर दुखी थे। उन्होंने तत्कालीन समाज की गति विधियों पर क्षोभ (रोष) प्रकट करते हुए कहा है, "यह विचित्र समाज है। जहाँ कोई एकता नहीं है। एक पुस्तकों का पाठ करता है, तो एक इधर - उधर भ्रमण करता है। एक हमेशा नग्न रहता है,तो एक योग युक्ति करके अपने शरीर को दुबला-पतला बनाता है। एक दरिद्र और दुखी है तो दूसरा उसको दान देता है। एक क्रिया कलाप में व्याकुल है तो एक सुरापान में। एक तन्त्र-मन्त्र औषध में विश्वास रखता है तो दूसरा समस्त नीति वाक्यों को कण्ठस्थ करता है। एक वह साधक है, जो तीर्थ-व्रत कर शरीर की वृत्तियों पर अंकुश रखता है,तो एक वह है जो राम-नाम की प्रीति में विश्वास ही नहीं रखता। एक होम यज्ञ करके अपना शरीर काला करता है, परन्तु ऐसे तप करने से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति तो राम-नाम से ही मिलती है।

" बाबा पेड़ छाड़ि सब डाली लागे मूँढ़े जंत्र अभागे।"[२४]

उस समय समाज में ऐसे बाह्य वेशधारी बहुत थे, जो पेड़ छोड़कर डाली पर लटके रहते थे। ये अभागे, मूर्ख लोग जन्त्र-मन्त्र के झँझट में पड़कर व्यर्थ ही जीवन का बहुमुल्य समय खो देते हैं ऐसा कबीरदास कहते हैं।

" अलष बिसारयो भेष में, बूड़े काली धार।"[२५]

उस समय समाज में अन्य वेषधारी लोग भी थे, जिनसे समाज पतन की धारा में डूब रहा था।

इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि विभूत करै अपार ।।
इक मुनियर इक मनहूँ लीन, ऐसे होत होत जग जात खीन ।।
इक आराधैं सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधैं जीव।
इक कुलदेव्यौं को जपहि जाप, त्रिभवन पति भूले त्रिविध ताप ।।
अंनहि छाँडि इक पीवहि दूध, हरि न मिले बिन हिरदैं सूध ।। [26]

कोई जटाधारी था, तो कोई अंग प्रत्यंग में अपार विभूति लगा कर इधर-उधर फिरता था। कोई मुनि बन कर मन की साधना करता था, तो कोई शिव अथवा शक्ति की उपासना करता था और परदे के भीतर जीव की हिंसा करता था। कोई कुल देवी की उपासना करता था, तो कोई अन्न छोड़कर दूध पीता था। परन्तु बिना हृदय-शुद्धि के हरि नहीं मिलता।

इन सब बाहरी भेषों में लोग अपने कर्तव्य भूल गये थे, जिसके कारण आपस में व्यवहार बिगड़ गए थे। इससे समाज में अलगाव आ गया था। सबकी अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग था।

पण्डितों को पुराण पढ़ना अच्छा लगता था, तो योगियों को ध्यान धारण करना। सन्यासी अपने सन्यास पर अभिमानी हो गए थे, तो तपस्वी अपने तप पर।

समाज के हर एक व्यक्ति में अभिमान की ऐंठन (खिंचवा) थी। लोगों के व्यक्तित्व में उदरता एवं गम्भीरता की कमी थी। जोगी, जती, जटाधारी आदि लोग कर्महीन थे। ये लोग समाज पर भार बने हुए थे, जो दूसरों की कमाई पर जीवित रहते थे। इनका समस्त जीवन ही अनुत्पादक था। ये सब प्राणी अवसर से हारे हुए थे। इस प्रकार कबीर के समाज में अनेक ऐसे धार्मिक पाखण्ड और रीति-रिवाज थे जिससे समाज का रूप विकृत हो गया था।

हिन्दू धर्म की भाँति मुसलमान धर्म में भी परम्परागत रीति-रिवाजों का प्रचलन था। कबीर ने हिन्दू समाज के धर्माडम्बरों पर जैसे प्रहर किया है, वैसे ही

मुसलमान समाज के धर्माडम्बरों पर भी उन्होंने आघात किए हैं। सुन्नत, हज, काबा, अजान, कुर्बानी, ताजियेदारी आदि की खिल्ली उड़ाई है। सुन्नत के सम्बन्ध में वे कहते हैं —

` सुन्नति किये तुरक जो होइगा, औरत का क्या करिये।
अद्ध सरीरी नारि न छोड़े, ताते हिन्दू ही रहिये ।। `२७

मुसलमानों के हज – काबे (मक्का-मदिना) करने की खिल्ली उड़ाते हुए कबीरदास कहते हैं, ` अगर अंत: करण शुद्ध नहीं तो हज, काबा करने से खुदा कैसे मिल सकता है ? इससे स्पष्ट है कि ईश्वर सम्बन्धी भरोसा कायम हो तो हर जगह हज-काबा है और सभी जगह खुदा का नूर है —

` मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि साँइ न बहरा होइ।
जाँ कारन तू बाँग देहि दिल ही भीतर सोई ।। `२८

` काँकर पाथर जोरि कर मस्जिद लिया चिनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।। `२९

मुसलमान मस्जिद में जाकर जोर-जोर से बाँग देते हैं। ईश्वरी प्रार्थना करते हैं। इस बाह्याडम्बर पर कबीर यह व्यंग्य करते हैं। कबीर के मतानुसार पाक दिल से खुदा की इबादत करना, दुआँ माँगना, सच्ची प्रार्थना है, खुदा तो दिल के भीतर ही है। वे कहते हैं, हे मुल्ला ! पत्थर-कंकड जोड़-जोड़ के तूने मस्जिद बनवा ली और उस पर चढ़कर जोर-जोर से तू बाँग देता है, क्या तेरा खुदा बहरा है ? `

कुरबानी और हलाल के बारेमें कबीरदास जी ने कहा है —

` गाफिल गरब करै अधिकाई, स्वारथ अरथि वधैए गाई।
जाको दूध धाइ करि पीजै, ता माता को बध क्यों कीजै ।। `30

मुसलमान कुरबानी और हलाल के नाम जो जीव-हिंसा करते हैं, उसे कबीरदास दोषपूर्ण मानते हैं और हिंसा से उन्हें रोकने का प्रयत्न करते हुए समझाते हैं, ` उनका यह कृत्य सत्कर्म नहीं, बल्कि दुष्कर्म है। जिसका हम दूध पीते हैं, उस माता का ( गोमाता ) वध हम क्यों करें ? उस उपकारी गोमाता का वध नहीं करना चाहिये। `

कबीरदास जी हमेशा ज्ञान या विचार को महत्व देते थे। जाति या धर्म के वे बिल्कुल पक्षपाती नहीं थे। उनका कहना था, ` हिन्दू वही है, मुसलमान वही है जिसका ईमान ठीक हो। जो समाज में सबके साथ सद्व्यवहार रखे। अगर व्यक्ति सद्व्यवहार को खोता है तो पूरे समाज को खोता है। समाज एक मानव परिवार है, जिसका संगठन, जिसका विकास ईमानदारी पर ही हो सकता है। ` इसीलिए कबीर ने ईमानदारी पर अधिक जोर दिया है। यह ईमानदारी जीवन का यथार्थ है। जीवन का सत्य है और जीवन का साध्य है। कबीर के समय इस सत्य का लोप हो गया था, जिसके कारण जन-जीवन में इतना संत्रास था। लोगों में संघर्ष का मूल कारण सत्य की कमी थी। गरीबी-अमीरी का भेद, राजनीतिक एवं धार्मिक अत्याचार सब असत्य के कारण हो रहे थे। समाज में कोई न्याय नहीं था धर्म का प्रचार एवं प्रसार अर्थव्यवस्था पर ही अवलम्बित था।

` ऐसा कोई न मिले, हम को दे उपदेस।
भौसागर में डूबता, कर गहि काढ़े केस।। `[31]

उस समय कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इन सब सामाजिक बुराइयों को दूर करता और समाज को व्यवस्थित रूप देता।

कबीरदास ने धर्म के क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति उपस्थित की, जो अभी तक किसी धर्म के आचार्य के द्वारा जनता के बीच में उपस्थित नहीं की जा सकी थी। उन्होंने पहली बार इस धार्मिक क्रान्ति के सहारे जनता के हृदय में अपने धर्म के लिए ऐसी सच्ची श्रध्दा का बीज बोया, जो अनेक युगो तक राजनीति और अन्य धर्मों के प्रचण्ड आघातों से भी जर्जरित नहीं हो सका। यह विचार-धारा जनता के लिए एक ऐसी शक्ति बनी जिसके द्वारा उनके जीवन का सबसे बड़ा बल सिध्द हुआ।

-- निष्कर्ष --

कबीरदास के समय में समाज में अन्धानुकरण ज्यादा था इसलिए लोगों में स्वतन्त्र चेतना का विकास नहीं हो सका। शासकों की विलासिता का प्रभाव साधारण जन-जीवन पर होने के कारण लोगों में अनेक दुर्गुण आ गए थे। जिससे

समाज में अनेक तरह के भ्रष्टाचार फैले थे। कोई सामाजिक व्यवस्था न होने के कारण समाज में बहुत से लोग बेकार थे, जो साधुओं के भेष में इधर-उधर घूमते फिरते थे।

राजनीतिक परिवर्तनों और अत्याचारों के कारण समाज में आर्थिक असमानता थी, जिससे सामाजिक प्रगति रुक गई थी। कबीरदास ने तटस्थ होकर समाज के इस बाह्य और अन्तरंग को देखा था। जहाँ भी उन्हें कुछ कमी दिखायी दी, उसकी उन्होंने आलोचना की। जिन पाखण्डों और दुर्व्यवस्थाओं का वर्णन कबीर के धार्मिक विचारों में पाया जाता है, वस्तुत: वे तत्कालीन समाज के मूल में विद्यमान थीं।

कबीर मनुष्य को विशुद्ध सामाजिकता की दृष्टि से देखते थे, इसीलिए उस समाज में जितने ऊपर से आरोपित आवरण थे उनको वे उतार फेंकना चाहते थे। वे मानव-जीवन के व्यवहार को एक धर्म के रूप मे देखना चाहते थे और समाज में प्रचलित सारे कर्मकाण्डों का तिरस्कार करते थे।

कबीर का विरोध उन सारी सामाजिक बुराइयों से था, न कि किसी धर्म या सम्प्रदाय से। वास्तव में कबीर के द्वारा किया गया विरोध एक वर्ग का विरोध था, जिसका नेतृत्व कबीर ने किया था। इन सब पाखण्डों की प्रतिक्रिया में कुछ कहने के लिए कबीर ही समर्थ थे, जो इतने साहस से बोल सकते थे। वे लोगों को मीठी और सच्ची बातें सुना सकते थे और पाँडों, मुल्लाओं को फटकार सकते थे।

वास्तव में कबीर ने जो कुछ कहा है, वह सर्व साधारण के लिए कहा है, वह पूरे समाज की भलाई के लिए है।

कबीरदास ने अपने स्वतंत्र और निर्भिक विचारों से सुधारके नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। उनकी समदृष्टि ने ही उन्हें सार्वभौमिक बना दिया।

संदर्भ सूचि

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक, प्रकाशन एवं संस्करण
१	कबीर की विचारधारा	डा. गोविन्द त्रिगुणायत	३१६	साहित्य निकेतन कानपुर-१, तृतीय-संस्करण : श्रावणी सं. २०२४
२	युग पुरुष कबीर	डॉ. रामलाल वर्मा डॉ. रामचन्द्र वर्मा	१८२	साहित्य ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली प्रथम संस्करण १८७८
३	कबीर और उनका काव्य	डॉ. भोलानाथ तिवारी	१२८	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, अप्रैल ६१
४	— वही —		१२९	—,,—
५	— वही —		१२९	
६	कबीर	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	२४६	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली-६ प्रथम संस्करण ७१
७	संत कबीर	डॉ. रामकुमार वर्मा	१००	साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, आठवी आवृत्ति, १९६७

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
८	कबीर	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	२६८	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,दिल्ली-६ प्रथम संस्करण १९७१
९	कबीर ग्रंथावली	डॉ.सावित्री शुक्ल डॉ.चतुर्वेदी	११३	प्रकाशन केन्द्र, लखनाऊ-७ मुद्रक प्रियंवदा प्रेस आगरा
१०	— वही —		५१३	— वही —
११	कबीर जीवन और दर्शन	डॉ.भोलानाथ तिवारी	९७	साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड,इलाहाबाद प्रथम संस्क.१९१८.
१२	— वही —		९८	— वही —
१३	कबीर और उनका काव्य	डॉ.भोलानाथ तिवारी	१२७	राजकमल प्रकाशन प्रा.लिमिटेड, दिल्ली,अप्रैल ६१
१४	— वही —		१२८	— वही —
१५	कबीर जीवन और दर्शन	डॉ.भोलानाथ तिवारी	९८	साहित्य भवन (प्रा.)लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९७८
१६	— वही —		९८	— वही —

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
१७	कबीर ग्रंथावली	संपा.डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख ` साखी `	३४	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी पंद्रहवाँ संस्करण सं.२०४१ वि.
१८	— वही —		३५	— वही —
१९	कबीर और उनका काव्य	डा.भोलानाथ तिवारी	१२९	राजकमल प्रकाशन प्रा.लिमिटेड,दिल्ली, अप्रैल १९६१
२०	कबीर ग्रंथावली	संपादक डॉ.श्यामसुन्दरदास लेख ` पद `	१५३	नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पंद्रहवाँ संस्करण सं.२०४१ वि.
२१	— वही —	— वही —	१५६	— वही —
२२	— वही —	,,	९८	,,
२३	— वही —	,,	१६३	,,
२४	— वही —	,,	११६	,,
२५	— वही —	,, लेख ` साखी `	३६	,,
२६	— वही —	,, लेख ` पद `	१६१–१६२	,,
२७	कबीर जीवन और दर्शन	डॉ.भोलानाथ तिवारी	१००	साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : १९७८
२८	— वही —	– वही —	१००	— वही —

संदर्भ क्रमांक	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृष्ठ क्रमांक	प्रकाशक,प्रकाशन एवं संस्करण
२९	कबीर और उनका काव्य	डॉ.भोलानाथ तिवारी	१३०	राजकमल प्रकाशन प्रा.लिमिटेड, दिल्ली,अप्रैल १९६१
३०	— वही —	,,	१००	— वही —
३१	कबीर ग्रंथावली	संपा.डा.श्यामसुन्दरदास लेख ' साखी '	५२	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, पंद्रहवी संस्करण सं.२०४१ वि.

..